और... एक शेर

जिंदा रहने के थे जितने उस्लूब
जिंदगी कट गई तब याद आए

-सादिक़ नसीम

लोकमत समाचार

तमसो मा ज्योतिर्गमय

प्रकृति को गहराई से देखें तो आप हर चीज को बेहतर समझ पाएंगे. ■ आईंस्टीन

संपादकीय

नगालैंड में शांति समझौता स्वागत योग्य पहल

केंद्र सरकार ने नगा अलगाववादी संगठन नेशनल सोशलिस्ट काउंसिल ऑफ नगालैंड के इसाक मुईवा गुट एनएससीएन (आईएम) के साथ एक शांति समझौते पर हस्ताक्षर किए हैं. इस समझौते से देश में लगभग छह दशक से चली आ रही विद्रोही गतिविधियों के समाप्त होने की उम्मीद है. नगा उग्रवाद देश का पहला उग्रवादी आंदोलन है. भारत के पूर्वोत्तर राज्य नगालैंड में लंबे समय से अलगाववादी आंदोलन चल रहा है और ये आंदोलन कई गुटों में बंटा है. लेकिन इस समझौते के बाद निश्चित ही खापलांग गुट सहित अन्य छोटे-छोटे गुट अलग-थलग पड़ जाएंगे. यह समझौता पूरे पूर्वोत्तर इलाके के लिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि जानकारों का मानना है कि पूर्वोत्तर राज्यों में चल रही अलगाववादी गतिविधियों को नगालैंड के विद्रोहियों का समर्थन और सहायता मिलती रही है. नगा समस्या 1950 के दशक के मध्य में शुरू हुई. 1997 में संघर्ष विराम समझौता हुआ और उसके बाद लगातार सरकार की ओर से समस्या के समाधान की दिशा में बातचीत का क्रम जारी रहा. प्रधानमंत्री का कहना है कि समझौते को होने में इसलिए इतनी देर लगी क्योंकि 'हम एक दूसरे को नहीं समझते थे.' देश की आजादी के बाद से ही नगा लोग अलग राष्ट्र चाहते थे. उन्होंने अपने आपको भारत का हिस्सा कभी नहीं माना. ब्रितानी राज की 'फूट डालो और राज करो' की नीति ने नगाओं को देश से अलग-थलग रखने में बड़ी भूमिका निभाई. समस्या के लंबा खिंचने का एक कारण चीन और म्यांमार का हस्तक्षेप भी रहा है. इनके कैडर को चीन में ट्रेनिंग मिलती थी. एनएससीएन (आईएम) के नेता टी मुईवा ने समझौते पर हस्ताक्षर करने के बाद कहा, ''हम एक नए रिश्ते में दाखिल हो रहे हैं. मैं आपको विश्वास दिलाना चाहता हूं कि नगाओं पर विश्वास किया जा सकता है.'' नगा राजनीतिक मुद्दा छह दशक से चल रहा है, जिसकी देश को भारी कीमत अदा करनी पड़ी है. नगा हिंसा में अब तक 40 हजार से अधिक जानें जा चुकी हैं. प्राकृतिक सौंदर्य से भरपूर पूर्वोत्तर राज्यों की सकारात्मक खूबियां लंबे समय से चल रहे अलगाववाद, हिंसात्मक उथल-पुथल के बीच दबकर रह गई हैं. इनकी पहचान के साथ अलगाववाद, उग्रवाद जुड़ गया है. मेघालय को छोड़ दें तो असम, मणिपुर और नगालैंड लंबे समय से आंतरिक अशांति से जूझ रहे हैं. पूर्वोत्तर को समझने के लिए हर क्षेत्र को करीब से समझना, देखना और इनके सीने में दबे दर्द को सहानुभूति व सौहार्द्रपूर्वक महसूस करना होगा. मूलतः कृषि पर आधारित नगालैंड के लोगों के बारे में कहा जाता है कि नगा लोग जन्म से ही प्रकृति प्रेमी होते हैं और संगीत तथा उत्सव इनके रग-रग में बसा रहता है. नगा अपनी मिट्टी, जंगल और संस्कृति के प्रति अनुरक्त रहते हैं. सामाजिक और आर्थिक विकास के नाम पर उन्हें अपनी विरासत से अलग नहीं किया जा सकता. इसलिए विकास की योजनाओं को बनाते समय इलाके की जनजातीय व्यवस्था को ध्यान में रखना ही होगा. उम्मीद की जानी चाहिए कि इस समझौते का पूर्वोत्तर के अन्य विद्रोही गुटों पर भी सकारात्मक असर होगा और नगालैंड सहित पूरा पूर्वोत्तर विकास के नए आयाम गढ़ेगा. ■■

बड़ा भाई

लघुकथा

पति-पत्नी किसी पर्यटक स्थल की सैर को रवाना हुए थे. अभी उन्हें घर से निकले दो घंटे ही हुए होंगे कि बड़े भाई ने फोन कर हाल-चाल पूछा. साथ में यह भी कहा कि फोन करते रहना.

'ठीक है भाई.' इतना कह छोटे ने फोन काट दिया.

सफर में वह पत्नी से बातें करने में इतना मशगूल हुआ कि फोन करना ही भूल गया.

बड़े भाई का ही फोन आया. 'कहां तक पहुंच गए, कोई परेशानी तो नहीं? अपना ख्याल रखना.'

'ठीक है भाई, हम अपना ख्याल रखेंगे.' छोटे ने जवाब दिया.

उसके फोन बंद करते ही उसकी पत्नी ने कहा, 'भाई साहब तो आपको बच्चा समझते हैं... बार- बार नसीहत देते हैं... सफर का सारा मजा किरकिरा कर दिया. लाओ, मुझे फोन दो. मैं स्विच ऑफ करती हूं.' और उसने वैसा ही किया.

घर पर बड़ा भाई बार-बार फोन मिला रहा था, पर फोन न मिल पाने के कारण बेचैन हो रहा था. उसकी बेचैनी देख पत्नी ने कहा, 'क्यों पागल हुए जा रहे हो? चिंता छोड़ो और आराम से सो जाओ.'

'कैसे सो जाऊं. पता नहीं, वे किस परिस्थिति में होंगे. फोन मिल ही नहीं रहा.' भाई ने बार-बार फोन मिलाते हुए कहा.

'सो जाओ न, और भी हैं इस घर में.' पत्नी ने खीझ कर कहा.

'मैं बड़ा हूं न.' बड़े भाई ने एक ठंडी आह भरते हुए कहा.■■

राधेश्याम भारतीय

'मोदी भारती' बनाम स्वायत्तता

आलोक मेहता
वरिष्ठ पत्रकार

राष्ट्रपति प्रणब मुखर्जी स्पष्ट शब्दों में स्वीकारते हैं कि ''संवैधानिक व्यवस्था के अनुसार राष्ट्रपति केंद्रीय मंत्रिमंडल के निर्णय और सलाह को मानने के लिए बाध्य हैं. पद पर रहते हुए वह संवेदनशील मुद्दों पर सरकार के निर्णयों पर सार्वजनिक रूप से अपनी राय भी व्यक्त नहीं कर सकते हैं.'' श्री मुखर्जी नियम-कानून-संविधान के संरक्षक के रूप में सर्वोच्च पद की गरिमा को बनाए हुए हैं. कार्यकाल के तीन वर्ष होने पर भी कोई विवाद राष्ट्रपति पद से नहीं जुड़ा. इसी तरह उपराष्ट्रपति हामिद अंसारी राज्यसभा के सभापति रहते हुए भी पूरी निष्पक्षता के साथ अपने दायित्व को निभाते हैं और अपने निजी विचार सरकार या सदन पर नहीं थोपते. मुखर्जी सर्वाधिक अनुभवी राजनेता तथा योग्य प्रशासक हैं. अंसारी अनुभवी एवं योग्य राजनयिक तथा शिक्षाविद रहे हैं. एक तरफ उनके धैर्य और संयम की सराहना होती है, दूसरी तरफ यह प्रश्न उठता है कि सरकार की गड़बड़ियों अथवा पूर्वाग्रहों के कारण देश में सांप्रदायिक उन्माद पैदा होने, बहुमत के बल पर समाज में जहरीली शिक्षा व्यवस्था लादने, अक्षम और अपराधी प्रवृत्ति के लोगों को महत्वपूर्ण पदों पर आसीन किए जाने पर राष्ट्रपति की स्थिति मूक दर्शक और असहाय की तरह रहना कहां तक उचित है? संविधान निर्माताओं ने नेहरू, सरदार पटेल, मौलाना आजाद जैसे नेताओं को ध्यान में रखकर यह कल्पना नहीं की होगी कि केंद्र में भारी बहुमत के बल पर आने वाली सरकारें संविधान के मूलभूत आदर्शों तथा सामाजिक मूल्यों से हटकर अपने विचार लागू कर सकती हैं. यही कारण है कि पिछले कुछ महीनों के दौरान राष्ट्रपति को सरकार की इच्छा पर जन विरोधी अध्यादेशों पर हस्ताक्षर करने पड़े. आधी रात को मंत्रिमंडल के अंतिम निर्णय पर फांसी के आदेश को स्वीकारना पड़ा. केंद्र सरकार द्वारा शिक्षा क्षेत्र में पूर्वाग्रही नीतियां लागू करने एवं अयोग्य व्यक्तियों को विभिन्न राष्ट्रीय संस्थानों में नियुक्त किए जाने पर आपत्ति नहीं कर सके. यह लोकतांत्रिक प्रक्रिया समाज और राष्ट्र के लिए कितनी सही है?

> स्वतंत्रता के सारे दावों के बावजूद मोदी सरकार के महत्वपूर्ण प्रसारणों में किसी निजी चैनल के कैमरों तक की छूट नहीं रखी गई, ताकि निजी चैनल केवल सरकार नियंत्रित कैमरे अथवा सरकार से अनुबंधित एक टी.वी.न्यूज एजेंसी पर निर्भर रह सकें.

सर्वोच्च पदों की मर्यादाओं का मुद्दा संविधान और आवश्यक संशोधनों पर निर्भर है. लेकिन शिक्षा, विज्ञान, संस्कृति, कला, साहित्य, प्रसार माध्यम जैसे क्षेत्रों में सत्ता के गंभीर पूर्वाग्रही हस्तक्षेप और मनमानी को क्यों नहीं रोका जा सकता है? समाज, देश-दुनिया को सही जानकारियां देने के साथ लगभग सत्तर करोड़ कम शिक्षित तथा सामान्य लोगों को जागरूक, सक्षम एवं स्वस्थ मानस बनाने का दायित्व स्वायत्त कहे जाने वाले संस्थान 'प्रसार भारती' का है. भाजपा के पूर्वज यानी जनसंघ के नेता अटल-आडवाणी ने इमरजेंसी के बाद प्रसारण माध्यम की स्वायत्तता के लिए 1978 में प्रसार भारती का बीजारोपण किया था. लेकिन अब 37 साल बाद भी प्रसार भारती न तो सही मायने में स्वायत्त हो पाया, न पूरी तरह सरकारी. हां, 2014 में भाजपा की सरकार आने के बाद से सत्ताधारियों ने प्रसार भारती को 'मोदी भारती' बनाने के लिए हरसंभव प्रयास जारी रखा है.

स्वतंत्रता के सारे दावों के बावजूद मोदी सरकार के महत्वपूर्ण प्रसारणों में किसी निजी चैनल के कैमरों तक की छूट नहीं रखी गई, ताकि निजी चैनल केवल सरकार नियंत्रित कैमरे अथवा सरकार से अनुबंधित एक टी.वी.न्यूज एजेंसी पर निर्भर रह सकें. लोकतंत्र की दुहाई देने वाले देश के बड़े नेता क्या अमेरिका, ब्रिटेन, जर्मनी, इटली, फ्रांस जैसे लोकतांत्रिक देशों में प्राइवेट समाचार चैनलों के कैमरों पर ऐसा नियंत्रण देख सकते हैं? वहां तो प्राइवेट चैनल विवादास्पद राष्ट्रपति या प्रधानमंत्री के निजी जीवन-रंगरेलियों का पीछा करने के लिए भी गुप्त तरीकों से कैमरे लगवा देते हैं. निजता की प्राइवेसी का मुद्दा अलग विवादित माना जा सकता है. लेकिन स्वतंत्रता-स्वायत्तता की बात करने वाली व्यवस्था में इन दिनों सूचना-प्रसारण मंत्रालय के 'अति लायल बाबू' तंत्र से यह सवाल उठाया जा रहा है कि दूरदर्शन की दर्शक संख्या में गिरावट आ रही है, इसलिए स्वास्थ्य और कृषि मंत्रालयों की ओर से प्रचार के लिए दी जाने वाली धनराशि में कटौती कर दी जाए. इसी तरह प्रसार भारती-दूरदर्शन आकाशवाणी को निजी चैनलों की तरह अधिक कमाई करने के निर्देश दिए जाएं. यों दूरदर्शन के तीन वर्ष के लिए प्रतिनियुक्ति पर आने वाले कुछ आई.ए.एस. महानिदेशक मुनाफा दिखाने की हरसंभव कोशिश भी करते रहे हैं.

सवाल यह है कि ब्रिटेन में यदि बीबीसी और अमेरिका में वॉयस ऑफ अमेरिका तथा संसद के चैनल मुनाफे की किसी शर्त के बिना स्वायत्त रह सकते हैं तो भारत में स्वास्थ्य, शिक्षा, कला-संस्कृति की जानकारियां गरीब अशिक्षित अथवा शिक्षित लोगों को स्वस्थ स्वायत्त ढंग से पहुंचाने पर आवश्यक खर्च क्यों नहीं दिया जा सकता? ■■

नगा समझौते में आस ज्यादा, विश्वास कम

मुकेश कुमार
जाने-माने पत्रकार

नगा उग्रवादी संगठन सोशलिस्ट काउंसिल ऑफ नगालैंड (एनएससीएन) के इसाक-मुईवा गुट के साथ हुए समझौते की घोषणा ने पूर्वोत्तर में शांति की एक नई आस पैदा कर दी है. उम्मीद जगी है कि देश के सबसे पुराने अलगाववादी आंदोलन की आंच इससे ठंडी पड़ेगी और हिंसा तथा अशांति का साठ साल पुराना दौर खत्म होगा. लगभग सौ साल पहले सन 1918 में नगा जनजातियों के नेताओं ने पहली बार भारत से अलग देश की मांग की थी. बाद में साइमन कमीशन से भी उन्होंने स्पष्ट कह दिया था कि वे भारत का हिस्सा नहीं बनेंगे. 1947 में आजादी के पूर्व जब देश की सरहदें तय हो रही थीं तो नगा नेताओं ने महात्मा गांधी और जवाहर लाल नेहरू से मिलकर अपनी मांग दोहराई थी, मगर समस्या का समाधान नहीं हो सका. सन 1956 में नगा विद्रोहियों ने सशस्त्र युद्ध छेड़ दिया, जो आज तक जारी है. नगा जनजाति अफगानों की ही तरह बेहद लड़ाकू मानी जाती है और कहा जाता है कि अंग्रेजों ने भी उनके सामने घुटने टेक दिए थे.

संघर्ष की इस लंबी पृष्ठभूमि के साथ देखने पर ये समझौता एक बड़ी उपलब्धि के रूप में दिखाई देता है. लेकिन सच्चाई यह है कि ये जितनी आशा पैदा कर रहा है उतना विश्वास नहीं. बहुत सारे किंतु-परंतु इसके साथ जुड़े हुए हैं और उनसे उबारकर समझौते को जमीन पर लागू करना बहुत बड़ी चुनौती साबित हो सकती है. नगालैंड की दुर्गम पहाड़ियां और जंगल इसकी राह को बहुत कठिन बना सकते हैं.

अविश्वास की पुख्ता वजहें हैं. दरअसल, नगा समस्या जितनी पुरानी है उतनी ही उलझी हुई भी. शायद यही वजह है कि समझौते की घोषणा के साथ प्रधानमंत्री मोदी या गृह मंत्रालय सहमति-पत्र के विवरण जारी नहीं कर सके, जबकि आमतौर पर ऐसा नहीं होता. जाहिर है इससे नगा समस्या से जुड़े दूसरे पक्षों में संदेह पैदा हो सकते हैं. वास्तव में समझौता सचमुच में एक ऐतिहासिक उपलब्धि है या नहीं, इसका आकलन तभी हो सकेगा जबकि सभी शर्तें उजागर कर दी जाएं. सभी जानना चाहते हैं कि आखिर विद्रोहियों को राजी करने के लिए सरकार ने क्या दिया-लिया है. बेशक नगा विद्रोही स्वतंत्र राष्ट्र की मांग से पीछे हट चुके थे, लेकिन भारत का हिस्सा बने रहने के लिए भी वे इस तरह की स्वायत्तता मांग रहे थे, जो अभी तक किसी भी प्रदेश को नहीं मिली है. सरकार ने इस मामले में क्या वायदे किए हैं और क्या उनसे वह पूरी तरह संतुष्ट है, ये देखना बेहद जरूरी है.

दूसरे, नगालैंड की भौगोलिक सीमाओं को लेकर भी जबर्दस्त उलझनें थीं. उग्रवादी मांग कर रहे थे कि उन्हें नगालिम (ग्रेटर नगालैंड) दिया जाए. इसमें मणिपुर, असम, अरुणाचल प्रदेश ही नहीं म्यांमार के भी उन इलाकों को नगालैंड में शामिल करने की मांग थी जहां नगा जनजाति के लोगों की काफी संख्या है. म्यांमार का मसला तो खैर अलग ही है और उसमें भारत सरकार कुछ कर नहीं सकती, लेकिन दूसरे राज्यों के इलाकों को नगालैंड का हिस्सा बनाना भी एक टेढ़ी खीर ही है. कोई भी राज्य इसके लिए तैयार नहीं है और न होगा. अगर उन पर इसके लिए दबाव डाला गया तो नए तरह के जातीय टकराव और हिंसा शुरू हो सकती है, जिससे हालात सुधरने की बजाय बिगड़ सकते हैं. फिर इससे कई तरह की प्रशासनिक अड़चनें भी जुड़ी हुई हैं, जिन्हें बिल्कुल भी नजरअंदाज नहीं किया जा सकता.

> समझौता सचमुच में एक ऐतिहासिक उपलब्धि है या नहीं, इसका आकलन तभी हो सकेगा जबकि सभी शर्तें उजागर कर दी जाएं.

एक दृष्टि से देखा जाए तो समझौता अधूरा है, क्योंकि इसमें नगा उग्रवादियों का केवल एक संगठन शामिल किया गया है. बाकी के धड़े, खास तौर पर एनएससीएन-खापलांग गुट का इसमें शामिल न होना एक महत्वपूर्ण पहलू है. उसे राजी नहीं किया जा सका है, बल्कि ये कहना ज्यादा ठीक होगा कि उसकी उपेक्षा की गई जिससे वह अलग हो गया. अगर आगे के शांति प्रयासों में वह हिस्सेदार नहीं बना तो समझौता खतरे में पड़ सकता है. ■■

सांसदों का निलंबन सरकार की नाकामी

शाहिद ए. चौधरी
वरिष्ठ पत्रकार

अटल बिहारी वाजपेयी की सरकार में राज्यमंत्रियों के पास कोई काम नहीं था, इसलिए सभी उदास व कुंठित थे. इस हालत से निकलने का क्या रास्ता था? सभी असंतुष्ट राज्यमंत्रियों के लिए सुमित्रा महाजन उर्फ ताई, जो स्वयं राज्यमंत्री थीं, ने अपने निवास पर चाय पार्टी का आयोजन किया ताकि आपसी दुखों को बांटा जा सके. इस अवसर पर ताई ने 'मेरा सुंदर सपना टूट गया' गीत भी गया. संदेश वाजपेयी तक पहुंच गया और आखिरकार राज्यमंत्रियों को कुछ काम मिलने लगा.

> कांग्रेस सांसदों का निलंबन भाजपा की अपनी आंतरिक राजनीतिक मजबूरियों के तहत उठाया गया कदम प्रतीत होता है.

71 वर्षीय ताई की राजनीति का यही अंदाज रहा है. बिना टकराव के अपना काम निकाल लेना, जो मध्य प्रदेश की अन्य भाजपा नेता उमा भारती के दबंग व विद्रोही स्वभाव के एकदम विपरीत है. अपने इसी शांत व न टकराने वाले स्वभाव के चलते ताई न सिर्फ 8 बार लोकसभा में प्रवेश कर चुकी हैं बल्कि भाजपा में जो उन्हें बार-बार हाशिए पर डालने का प्रयास होता रहा है, उसे भी वह दरकिनार करती रही हैं. वाजपेयी दौर में ताई ने न केवल भाजपा के तत्कालीन अध्यक्ष कुशाभाऊठाकरे से समीकरण स्थापित करके मध्य प्रदेश की भाजपा इकाई में गुटबाजी का सफल सामना किया बल्कि अपने लिए मानव संसाधन मंत्रालय के तहत अलग महिला व बाल विकास मंत्रालय लेने में भी कामयाब रहीं. इसलिए जब 3 अगस्त 2015 को वह बतौर लोकसभा स्पीकर 25 कांग्रेसी सांसदों को पांच दिन के लिए लोकसभा की कार्यवाही से निलंबित किया तो उन्हें जानने वाले चौंक पड़े क्योंकि ऐसा करके उन्होंने एक तरह से टकराव का मार्ग अपनाया जो कि उनके अतीत व स्वभाव के एकदम विपरीत है.

इसीलिए यह भाजपा की अपनी आंतरिक राजनीतिक मजबूरियों के तहत उठाया गया कदम प्रतीत होता है. मगर इस कदम से एक निष्पक्ष स्पीकर की कामकाज की शैली में सवाल तो उठता ही है. पिछले 30 साल में यह पहला ऐसा मौका है जब लोकसभा में एक राजनीतिक पार्टी (भाजपा) के पास स्पष्ट बहुमत है. इस समय विपक्ष इतना कमजोर है कि वह सदन में विपक्ष के नेता का पद भी हासिल नहीं कर सकता. ऐसे में उम्मीद यही की जानी चाहिए थी कि स्पीकर नरमी से सदन को चलाएं, बहसों में विपक्ष को पर्याप्त जगह दें और चेयर के सम्मान को पुनः स्थापित करें जैसा कि पूर्व में अधिक संतुलित लोकसभाओं में देखने को नहीं मिल रहा था.■■

नजर के पार

उमर की मौत से कमजोर नहीं होगा तालिबान

विष्णुगुप्त
वरिष्ठ स्तंभकार

मुल्ला उमर तालिबान की रीढ़ था. मुल्ला उमर अफगानिस्तान तालिबान का प्रमुख तो था ही, इसके अलावा वह तालिबानी शासनकाल के दौरान अफगानिस्तान का राष्ट्रपति भी था. यह भी कहा जाता है कि मुल्ला उमर अलकायदा के सरगना ओसामा बिन लादेन का ससुर भी था. तालिबान का इतिहास जानने वाले और तालिबान का लेखा-जोखा जानने वाले यह जानते हैं कि ओसामा बिन लादेन ने ही मुल्ला उमर को अफगानिस्तान का राष्ट्रपति बनवाया था और मुल्ला उमर पूरी तरह से ओसामा बिन लादेन के प्रति समर्पित था. मुल्ला उमर को अमेरिका पर हुए हमले की पूर्व जानकारी थी और हमले की रणनीति की भी उसे जानकारी थी. मुल्ला उमर चाहता तो अमेरिका के साथ समझौता कर अफगानिस्तान का राष्ट्रपति कायम रह सकता था और तालिबान सरकार को गतिमान रख सकता था पर उसने ओसामा बिन लादेन को अमेरिका को नहीं सौंपा. मुल्ला उमर ने सत्ता छोड़कर भागने और जेहाद करने का रास्ता चुना था. ओसामा बिन लादेन, अलकायदा के जवाहिरी तथा तालिबान के कई शीर्ष नेता अमेरिकी फौजों के हाथो मारे गए हैं, कुछ ने अमेरिका के साथ हाथ मिला लिए थे पर मुल्ला उमर पकड़ से बाहर था. मुल्ला उमर कभी पाकिस्तान तो कभी अफगानिस्तान के दुरूह भूभागों से तालिबान की आतंकवादी गतिविधियों व आतंकवादी हिंसा का नेतृत्व कर रहा था. मुल्ला उमर इधर वर्तमान अफगानिस्तान सरकार और पाकिस्तान के साथ वार्ता-वार्ता का खेल-खेल रहा था. यह कहना सही है कि मुल्ला उमर की मौत से तालिबान की बहुत बड़ी क्षति हुई है और अफगानिस्तान-पाकिस्तान के अंदर में सक्रिय तालिबान-अलकायदा जैसे आतंकवादी संगठनों के लिए भी एक बड़ा आघात है और सबक भी है पर क्या मुल्ला उमर के अंत से भी अफगानिस्तान में शांति आ पाएगी या नहीं, मानवता शर्मसार होने से बची रहेगी या नहीं? तालिबान अपने नेता मुल्ला उमर का बदला लेने के लिए आतंकवादी हिंसा की बाढ़ पर बाढ़ जरूर लाएगी, ऐसी आशंका को खारिज नहीं किया जा सकता है.

मुल्ला उमर की मौत के बाद जिस तरह अमेरिका में खुशी मनाई गई है और अमेरिका अपनी कार्रवाई को लेकर खुद अपनी पीठ थपथपा रहा है, वह भी खतरनाक खुशफहमी है बल्कि आतंकवाद के प्रति उसकी सोच-समझ पर भी प्रश्नचिह्न खड़ा होता है. आम तौर पर कहा जा सकता है कि अगर अमेरिका ने तालिबान के इतने बड़े नेता को मार गिराया है और तालिबान को इतना बड़ा आघात दिया है तो अमेरिका खुश होगा ही व आतंकवाद के खिलाफ लड़ाई में अमेरिका की बड़ी जीत मानी जाएगी. लेकिन जो तालिबान को जानते हैं, अलकायदा को जानते हैं, बोको हराम को जानते हैं, आईएस को जानते हैं, उन्हें यह मालूम है कि ओसामा बिन लादेन, मुल्ला उमर जैसे आतंकवादी सरगनाओं की मौत से ज्यादा कुछ फर्क नहीं पड़ता है, आतंकवादी संगठनों के विचार नहीं बदल जाते हैं, आतंकवादी संगठन कट्टरता को छोड़कर उदारवाद का सारथी नहीं बन जाते हैं, आतंकवादी संगठनों में शामिल होनेवाले लड़के-लड़कियों का कोई अकाल नहीं पड़ जाता है.

तोल बोल

कांग्रेस के पॉलिटिकल डीएनए में लोकतंत्र है नहीं. आज भी मां अध्यक्ष और बेटा उपाध्यक्ष है. ये हमें लोकतंत्र सिखाएंगे.

■ प्रकाश जावड़ेकर, केंद्रीय मंत्री

मुझे पूरा विश्वास है कि यदि दिल्ली पुलिस को सुरक्षा के मामले में पूरी आजादी दे दी जाए तो खूबसूरत महिलाएं भी आधी रात के बाद बिना किसी डर के सड़कों पर निकल सकती हैं.

■ सोमनाथ भारती, 'आप' विधायक

gñWinHš gnXHš :
nd. OdhabrIb XSñ
M`a Z, E[SQñ{a`b ~šS :
{dO~ XSš
E[SQa-BZ-MrÑ :
arOB XSñ
gnXH :
{dHšrg {_I ★
★ nr. Aæ. ~r. HbZZ Hš AZgæ gnU gnXHš` Xo{`Ed Hš {bE {Oâ_Xæ.

© लोकमत समाचार _ àHñ{eV g^r gr_Jr Hš gdñ{YHšæ brHš_V
_r{S`ñ àn`dÕ {b. Hš mg gæ{j V h.
brHš_V _r{S`ñ àn`dÕ {b. Hš {bE _DHš Ed àHšeHš बालाजी मुले Ûæar
brHš_V _r{S`ñ àn. {b., ßbrÕ Hš. 192, 207, 208 E _. AæB. Sr. gr.
BrS{fÕ` b E[a`ñ, ~Qr~rær, ZxJna _ {ÐV Ed brHš_V ^dZ n.
Odhabrib Zhš _ñJ, ZxJna _ àHñ{eV.
P.O.BOX NO. 230 R.N.I. No. 47101/89
XaÛdZ : 0712-2423527 (7 brB'g) \ÑSg : 6618555
Email : gnXHš` : lsedit.ngp@lokmat.com
{dkmZ : advt.ngp@lokmat.com {dVaÛ : circ.ngp@lokmat.com

इतिहास पर नजर 5 अगस्त

आज ही के दिन 1962 में हॉलीवुड की मशहूर अभिनेत्री मर्लिन मुनरो का शव उनके लॉस एंजेल्स आवास पर पाया गया था. उनके घर की देखभाल करने वाली महिला ने तड़के डाक्टरों को फोन करके बुलाया और दोनों डाक्टरों ने 36 वर्षीय मुनरो को घर पर ही मृत घोषित कर दिया था. मर्लिन मुनरो के शयन कक्ष का दरवाजा बंद होने के कारण डाक्टरों को दरवाजा तोड़ कर कमरे में घुसना पड़ा था. बाद में अधिकारियों ने कहा था कि शायद मुनरो ने आत्महत्या की . बहुत से लोगों को इस पर संदेह रहा और बाद में भी इसकी चर्चा होती रही. मर्लिन मुनरो का जन्म 1926 में हुआ था. उनकी मां का मानसिक बीमारी का इलाज चलता रहा और मुनरो ने अपना ज्यादातर बचपन या तो अनाथाश्रम में बिताया या फिर दूसरों के घर में. वर्ष 1946 के बाद से मुनरो ने फिल्मों में काम शुरू किया. एक साल के भीतर ही उन्होंने 30 बड़ी फिल्मों में काम कर लिया था.■■

- 1775-महाराजा नंद कुमार को कलकत्ता(कोलकाता) में फांसी दी गई.
- 1874-जापान ने इंग्लैंड की तर्ज पर डाक बचत प्रणाली शुरू की.
- 1914-अमेरिका में पहली ट्रैफिक लाइट लगाई गई.
- 1914-प्रथम विश्व युद्ध में क्यूबा, उरुग्वे, मैक्सिको और अर्जेंटीना ने तटस्थ रहने की घोषणा की.
- 1991-न्यायमूर्ति लीला सेठ उच्च न्यायालय की पहली महिला मुख्य न्यायाधीश बनीं.

पाठकों के पत्र

फौजियों की फरियाद सुनें

पूर्वसैनिक वन-रैंक वन-पेंशन लागू करने के लिए सरकार से फरियाद कर रहे हैं. लेकिन सरकार ने पूर्वसैनिकों की इस मांग पर उदासीनता बरत रखी है. न्यायालय ने भी पूर्वसैनिकों के पक्ष में निर्णय दिया है. अफसोस है कि 40 बरस बीत गए लेकिन पूर्वसैनिक वन-रैंक वन-पेंशन से अभी तक वंचित हैं. सरकार की ढुलमुल नीति पूर्वसैनिकों को रास नहीं आ रही है. किसी आपदा के समय स्थिति से निपटने के लिए सरकार को सेना की झट याद आती है, लेकिन वन-रैंक वन -पेंशन के संबंध में फौजियों की फरियाद पर सरकार सिर्फ टालमटोल करती नजर आ रही है.

■ संजय कुमार आर्य, नागपुर

कर्ज का बोझ

ग्रीस के संकट से सब भली-भांति परिचित हैं. लेकिन भारत पर भी कर्ज का बोझ कम नहीं है. हम अपने संसाधनों के भीतर ही विकास कर लें तो बेहतर है. देश का विकास करना जरूरी है, लेकिन कर्ज का बोझ बढ़ना कदापि उचित नहीं है.

■ विनोद नायडू, बल्लारशाह

आप भी अपने पत्र हमें lsedit.ngp@lokmat.com पर मेल कर सकते हैं या डाक पते पर भेज सकते हैं.

नकलचियों की जीत

विविध

चार्ली चैपलिन के जन्मदिन पर एक बार इंग्लैंड में एक समारोह आयोजित किया गया. सारे इंग्लैंड से अभिनेता बुलाए गए, चार्ली चैपलिन का अभिनय करने के लिए. प्रतियोगिता रखी गई और तीन पुरस्कार थे. बड़े पुरस्कार थे. खुद सम्राट उन पुरस्कारों को बांटने वाले थे. लाखों रुपए पुरस्कार स्वरूप प्रदान किए जाने थे.

चार्ली चैपलिन को मजाक सूझा. उसने सोचा, मैं भी इसमें किसी और नाम से सम्मिलित क्यों न हो जाऊं. और मुझे तो प्रथम पुरस्कार मिलना निश्चित ही है. मैं खुद ही चार्ली चैपलिन हूं.

किसी ने यह सोचा भी नहीं था कि चार्ली चैपलिन इसमें सम्मिलित हो जाएगा. वह एक दूसरे नाम से सम्मिलित हो गया. सौ लोग चुने गए, उनमें एक वह भी था. फिर उन सौ की अंतिम प्रतियोगिता हुई. और वह हैरान हुआ.

घटना जब खुली, तब सारी दुनिया हंसी. वह नंबर तीन पर आया. खुद चार्ली चैपलिन, चार्ली चैपलिन का अभिनय करने में नंबर तीन पर आया. नकलची बाजी मार ले गए. ■■